International Journal of Hindi Research
www.hindijournal.com
ISSN: 2455-2232
Received: 16-12-2020, Accepted: 06-01-2021, Published: 31-01-2021
Volume 7, Issue 1, 2021, Page No. 82-85

योग में ईश्वर की अवधारणा

हर्षवर्धन गोस्वामी
एसोसिएट प्रोफेसर, एम.एम.एच कालेज, गाजियाबाद, उत्तर प्रदेश, भारत

सारांश
भारतीय दर्शन मूल रूप से दो वर्गों में विभाजित है आस्तिक दर्शन तथा नास्तिक दर्शन । आस्तिक दर्शनों में योग दर्शन ही एक ऐसा दर्शन है जो मानव जीवन में अध्यात्म, वाद–विवाद या तर्कशास्त्र को महत्व न देते हुए जीवन के उत्थान के लिए मानव देह के व्यावहारिक प्रयोगात्मक पक्ष पर विशेष बल देता है। इसी कारण इस दर्शन में आसन, प्राणायाम, यौगिक क्रिया आदि के माध्यम से आध्यात्मिक उपलब्धि पाने की बात दर्शई गई है। इसी विशेषता के कारण प्राचीन से लेकर आज तक 'योग' अपनी उपयोगिता बनाये हुए है। ईश्वर की उपयोगिता योगसाधन में नितान्त मौलिक है। ईश्वर–प्रणिधान से समाधि की सिद्धि मानी जाती है। प्रणिधान से क्लेश क्षीण हो जाते है। जो समाधि अभ्यास और वैराग्य के द्वारा परिश्रम से साध्य होती है। उसका सम्पादन इस प्रणिधान से सुगमता से हो जाता है। अतः समाधि की सिद्धि का सरल–साधन ईश्वर–प्रणिधान है। योग भारतीयों की विशिष्ट सम्पत्ति है। जिनका विज्ञान की भाँति अनुशीलन किया है तथा उन्नति की चरम सीमा पर पहुंचा दिया है। काया और चित्त को मलों से निर्मुक्त कर पुरूष की आध्यात्मिक उन्नति में उपयोग करना 'योग' ने ही सिखाया हैं योग व्यावहारिक है। इसकी तत्त्वमीमांसा सांख्य के समान है। आधुनिक युग में योग की महत्ता अत्याधिक है। भारतीय एवं पाश्चात्य दोनों जगत् में मनुष्य योग क्रियाओं के प्रति आकृष्ट हुए हैं। आज के भौतिकवादी युग में मानव को मानसिक शान्ति, शरीर को स्वस्थ रहने में 'अष्टांग योग की अत्यधिक महत्ता है।

मूल शब्दः आस्तिक, नास्तिक, दर्शन, ईश्वर, अभ्यास, वैराग्य

प्रस्तावना
पाणिनी ने योग शब्द की व्युपत्ति ''युजिरयोगे'' एवं 'युज समाधौ' इन दो धातुओं से की है। प्रथम व्युत्पत्ति के अनुसार योग शब्द का अनेक अर्थों में प्रयोग किया गया है जैसे–जोडना, मिलाना, मेल आदि। इसी आधार पर जीवात्मा और परमात्मा का मिलन योग कहलाता है। इसी संयोग की अवस्था को समाधि की संज्ञा दी जाती है। जो कि जीवात्मा और परमात्मा को समतावस्थाजनित होती है।

समाधिः समतावस्था जीवात्मा परमात्मनोंः।
संयोगों योग इत्युक्तो जीवात्मा परमात्मनोंः।। (वशिष्ठ संहिता 1/44)

महर्षि पंतजलि ने योग शब्द को समाधि के अर्थ में प्रयुक्त किया है। व्यासजी ने योगः समाधिः कहकर योग शब्द का अर्थ समाधि ही किया है। वाचस्पति का भी यही मत है।
संस्कृत व्याकरण के आधार पर 'योग' शब्द की व्युत्पत्ति निम्नप्रकार से की जा सकती है।

1. **युज्यते एतद् इतियोग–** योग चित्त की वह अवस्था है जब चित्त की समस्त वृत्तियों में एकाग्रता आ जाती है।
2. **युज्यते अनेन इतियोग–** योग वह साधन है जिससे समस्त वृत्तियों में एकाग्रता लाई जाती है।
3. **युज्यते तस्मिन् इतियोग–** योग वह स्थान है जब चित्त की समस्त वृत्तियों में एकाग्रता उत्पन्न की जाती है।

महर्षि पंतजलि के अनुसार

योगाश्चित्तवृत्तिनिरोधः। ;पा.यो.सू.1/2द्ध

चित्त की समस्त वृत्तियों के निरोध से उत्पन्न अवस्था को योग कहते है। भगवद्गीता के अनुसार
समत्वं योग उच्यते। ;गीता 2/48द्ध

अशान्त व दुःखित मन जब सुव्यवस्थित होकर शान्त व निर्व्दन्द्वतापूर्वक समस्थिति को प्राप्त होता है। उसे योग कहते है।

भगवद्गीता के अनुसार

योगः कर्मसु कौषलम्। ;गीता 2/50द्ध

भगवान श्रीकृष्ण ने कर्मों में कुशलता को योग कहा है। योग वह अवस्था है जिसमें मन, इन्द्रियों और प्राणों की एकता हो जाती है। (मैत्रायणो उपनिषद् 6/25)

योग की परंपरा
योग की परंपरा अत्यंत प्राचीन है। इसमें कोई शंका नहीं हो सकती लेकिन यह कितनी प्राचीन है? उसको प्रारंभ किसने किया? और कब किया? इन प्रष्नों का सीधा एक ही उत्तर देना शायद संभव नहीं होगा, परंतु प्राचीन साहित्य में योग

का प्रारंभ किसने किया इसके संबंध में उल्लेख मिलते है। जैसे गीता के चतुर्थ अध्याय के आरंभ में श्रीकृष्ण ने अर्जुन से कहा कि मैने इस योग का उपदेश सृष्टि के आंरभ में सूर्य देवता को दिया था, सूर्य ने अपने पुत्र (वैवस्वत्) मनु को वह योग सिखाया, मनु ने इक्ष्वाकु को बताया और फिर एक राजर्षियों को लंबी परंपरा चली। अंत में वह योग लुप्त हो गया उसी को मैने आज तुम्हारे सामने पुनः प्रकट किया है।

योगविद्या सृष्टि के प्रारंभ से ही विद्यमान थी। इस कल्पना का उल्लेख अन्यत्र भी मिलता है। ऋग्वेद के दसवे मंडल में कहा गया है कि हिरण्यगर्भ से सबसे पहले सृष्टि का निर्माण हुआ। इसी ने पृथ्वी, स्वर्ग आदि सभी को धारण किया।

हिरण्यगर्भः समवर्तताग्रे भूतस्यः जतः पतिरेक आसीत्। स दाधार पृथिवी द्यामुतेमां कस्मै देवाय हविषा विधेम।।

हिरण्यगर्भ को सभी विद्याओं एवं कलाओं का आद्यप्रवर्तक माना जाता है।

बृहद्योगियाज्ञवल्क्य स्मृति में हिरण्यगर्भ को योग का उपदेश कहा गया है। हठप्रदिपिका में योगी स्वात्माराम ने आदिनाथ अर्थात् भगवान शिव को हठयोग का उपदेष्टा स्वीकार किया है।

श्री आदिनाथाय नमोऽस्तु तस्मै येनोपदिष्टा हठयोग विद्या **(1/1)**

इन उल्लेखों से योग के दिव्य उत्पत्ति का पक्ष सामने आता है। परंतु मानव ने उसका उपयोग कब आंरभ किया इस प्रष्न का उत्तर उल्लेखों में नहीं मिलता। हिरण्यगर्भ भगवान् शिव या आदिनाथ इनमें से कोई ऐतिहासिक व्यक्ति नहीं है। परंतु इन उल्लेखों से हम यह कह सकते है कि इतिहास की पहुँच जहां तक पीछे जा सकती है। उस काल में भी योगविद्या विद्यमान थी। वास्तव में प्राचीन ऋषियों की अंतर्दृष्टि का कारण भी योग ही था। तभी सदा से दार्शनिकों और धर्म प्रचारकों ने 'योग' की उपयोगिता मानी है। तथा उसका विवेचन अपने–अपने दृष्टिकोण से किया है। इसलिए योग के अनेक प्रकार है। बुद्धधर्म के पालित्रिपिटकों तथा संस्कृत ग्रंथों में भी योग का विवेचन पर्याप्त मात्रा में मिलता है। महावीर स्वामी स्वयं योगी थे और जैन धर्म में योग का विवेचन विशिष्टता से हुआ है। तंत्रो में तो योग का महत्वपूर्ण स्थान है। गोरखनाथ के नाथ–संप्रदाय में योग का इतना आदर है कि उस संप्रदाय को योगी संप्रदाय के नामसे पुकारते है। नाथपंथी सिद्ध 'हठयोग' के परमाचार्य माने गए है। 'मंत्रयोग' 'लययोग' आदि योग प्रसिद्ध है। परंतु 'योग दर्शन' पंतजलि का दर्शन है जिसे 'राजयोग' की संज्ञा मिली है।

योग के इतिहास को हम पांच खण्डों में विभजित कर सकते है–

1. श्रुतिकाल– वेदों के प्राकट्य से लेकर भगवान बुद्ध के बाद लगभग दो शताब्दियों तक।
2. दर्शनोंकाल– इसमें विभिन्न भारतीय दर्शनों के सूत्रगंथों की रचना हुई।
3. टिकाग्रंथों का काल– इस काल में टिकाएं लिखी गई।
4. भक्ति तथा हठयोगकाल– इस काल में हठयोग संप्रदाय तथा भक्ति संप्रदाय का प्रचार प्रसार हुआ।
5. आधुनिक काल– 19वी शताब्दियों में मध्य से योग के इतिहास का आधुनिक काल मानते है।

योगदर्शन के प्रवर्तक एवं साहित्य

योगदर्शन अत्यंत प्राचीन है। महर्षि पतंजलि को योग के आदि प्रवर्तक के रूप में जाना जाता है। योग की विभिन्न धाराओं को मिलाकर उन्होंने एक महा नदी का रूप दिया जिसके अंदर योग की सभी पद्धतियों का समावेश हो जाता है।

योगेन चित्तस्य पदेन वाचां मलं शरीरस्य च वैद्यकेन।
याोऽपाकरोत्तं प्रवरं मुनीनां पतन्जलि प्रन्जलिरानतोऽस्मि।।

अर्थात महर्षि पजंजलि ने मनुष्य के चित्त की शुद्धि के लिए योगसूत्र की वाणी की शुद्धि के लिए व्याकरण के ग्रन्थ अष्टाध्यायी तथा शरीर की शुद्धि के लिए चरक संहिता इन तीन महाग्रंथों की रचना की।

पातंजल योगदर्शन

योगसूत्र महर्षि पतंजलि द्वारा लिखित ग्रंथ है जिसे योगदर्शन भी कहा जाता है यह 4 अध्यायों में विभक्त है।

1. समाधिपाद

इसके अन्तर्गत 51 सुत्र आते हैं। इसमें निम्नलिखित विषयों पर प्रकाश डाला गया है, योग की परिभाषा, उद्देश्य, वृत्तियॉ, वृत्तिनिरोध के उपाय, सम्प्रज्ञान और जप, योग मार्ग की बाधायें, मन के सर्वांगीण विकास की सिद्धि तथा सबीज और र्निबीज समाधि का वर्णन मिलता है।

2. साधनपाद

इसके अन्तर्गत 55 सूत्र आते हैं जिनका निम्न उपायों से संबंध है– क्लेश, क्लेश निवृत्ति, क्लेश निवृत्ति के उद्देश्य, वृत्तियॉ, ज्ञाता और ज्ञात, सजगता, और अभाव, महर्षि पतंजलि का अष्टांग योग, यम, नियम निषेधात्मक विचारों के नियंत्रण की विधि यम निमय की पूर्णता तथा उनके परिणाम, आसन, प्राणायाम, प्रत्याहार आदि।

3. विभूतिपाद

इस अध्याय में 55 सूत्र हैं जो निम्न विषयों पर प्रकाश डालते हैं– धारण, ध्यान, समाधि, संयम, समाधि परिणाम (चेतना का रूपांतरण) बाह्यदृश्य जगत् की उन्नति और सिद्धियां।

4. कैवल्यपाद

इस अध्याय में 34 सूत्र है जो निम्न पर प्रकाश डालते हैं। सिद्धि प्राप्ति के साधन, व्यक्तित्व का कारण, व्याष्टि और समष्टि, मन व कर्म, व्याख्या और विचार, अन्य वस्तुओं में निहित एकता के दर्शन का सिद्धांत, कैवल्य मार्ग और कैवल्य का वर्णन मिलता है।

योगदर्शन में भी सांख्य दर्शन में वर्णित 25 तत्वों को बिना विवाद क मान लिया है, परंतु 26 तत्व ईश्वर को भी स्वीकृत किया है। योगशास्त्र में ईश्वर की आवधारणा जगत् के मूल

कारण के रूप में नहीं हुई है। अपितु योगसाधना के संदर्भ में ईश्वर का स्थान महत्वपूर्ण माना गया है। पतंजलि के अनुसार ईश्वर केवल ध्यान का विषय नहीं बाल्के बाधाओं को दूर करके लक्ष्यप्राप्ते में सहायता प्रदान करने वाला भी है।

योगदर्शन भी ईश्वर को जगत् का कर्ता कर्म फलप्रदाता तथा वेदों का रचियता स्वीकार करता है। किन्तु इनसे भी अधिक ईश्वर की उपयोगिता योग में समाधि की सिद्धि के लिये स्वीकार की गयी हैं–

ईश्वर प्राणिधानाव्दा। (1/23)

इस सूत्र के द्वारा पतंजलि यह कह रहे है कि ईष्वर की विशेष भक्ति से समाधि की सिद्धि शीघ्र होती है। भक्ति से प्रसन्न

होकर भगवान योगसाधक के मार्ग में आने वाले समस्त योगान्तराओं का निवारण कर देते है जिससे वह शीघ्र ही सम्प्रज्ञात समाधि को प्राप्त कर लेता है।

क्लेशकर्मविपाकाष यैर परामृष्टः पुरूष विशेष ईष्वर (1/24)

अर्थात् क्लेश, कर्म, कर्मविपाक तथा कर्माशय इन चारों से सर्वथा असंभव जो पुरूष विशेष है वह ईष्वर कहलाता है।

तस्य वाचकः प्रणवः। (1/27)

ईश्वर का मुख्य वाचक नाम ओम् हैं–ओंकार को प्रणव कहा जाता है। परमात्मा ही सबका रक्षक है। इसलिये ओम् कहलाता है। ईश्वर परम गुरू या परम पुरूष है, जो सभी जीवों से ऊपर व सभी दोषों से युक्त है। वह नित्य सर्वव्यापी, सर्वज्ञ, सर्वशक्तिमान पूर्ण परमात्मा है।

संसार के जीव अविद्या, अंहकार, वासना, राग–द्वेष और अभिनिवेश के कारण दुःख पाते है और उनके फलस्वरूप सुख–दुःख पाते है। दुःखों से मुक्ति या कैवल्य प्राप्त करने पर भी मुक्तात्मा के विषय में यह नहीं कहा जा सकता कि वह सर्वदा से मुक्त या ईष्वर ही नित्यमुक्त, एकरस, निर्विकार कहा जा सकता है। ईष्वर की सिद्धि के लिए निम्न युक्तियों दी जाती है– वेद, उपनिषद् आदि समस्त शास्त्र ईष्वर या परमात्मा को आदि सत्ता के रूप में मानते है। उसी का साक्षात्कार जीवन का चरम लक्ष्य माना जाता है।

योगशास्त्र में 'ईश्वर' का महत्वपूर्ण स्थान है। चित्त की वृत्तियों का निरोध ही योग है। 'ईश्वर' के जप से तथा उनके अर्थ की भावना करने से चित्त 'एकग्रता' को प्राप्त करता है।2 जिसके द्वारा चित्त वृत्तियों का निरोध होता है। पंतजलि ने

'योगसूत्र' में ईश्वर का लक्षण करते हुए कहा है कि अविद्या, अस्मिता, राग, द्वेष तथा अभिनिवेश इन पाँच क्लेशों सेः पुण्य पाप कर्मो से उत्पन्न जाति, आयु तथा भोग रूप फलों सेः उनसे उत्पन्न वासनाओं से असंस्पृष्ट एक विशेष प्रकार के 'पुरूष' को 'ईश्वर' कहते है।

ईश्वर की विशेषताएं

1. जीव को वासनाओं के कारण भोग करना पड़ता है। ईश्वर इन भोगों से स्वतन्त्र है। जीव जब बन्धनों से मुक्त हो जाता है। तब केवली कहलाता है। पर ईश्वर न कभी बन्धन में था, न होगा। वह मुक्त पुरूषों से भिन्न है।
2. प्रकृति को ही आत्मा समझने वाला पुरूष शरीर के नाश के पश्चात् प्रकृतिलीन हो जाता है। फिर भी भविष्य में उसके बन्धन की सम्भावना रहती है। अतएव ईश्वर प्रकृतिलीन पुरूष से भी भिन्न है।
3. ईश्वर, ज्ञान –शक्ति इच्छा शक्ति के कारण ईश्वर कहलाता है। वह सदा एक रस और निर्विकार है। कर्म और उसके फल इसे नहीं व्याप्त करते।
4. ईश्वर सर्वज्ञ है। वह समस्त भावों का अधिष्ठाता है। ईश्वर में शाश्वत उत्कर्ष हैं।
5. ईश्वर सर्वश्रेष्ठ है। ईश्वर के मुल्य अथवा उससे अधिक गुण सम्पन्न कोई नहीं है। ये गुण अनादि काल से ईश्वर में है। ईश्वर सदैव ऐश्वर्य– सम्पन्न है। वस्तुतः ईश्वर का शाब्दिक अर्थ ही ऐश्वर्य सम्पन्न है।
6. ईश्वर में अपूर्णता लेशमात्र भी नहीं है। वह कर्म के विधान से ऊपर है। ये गुण सदा एक रस और नित्य परमानन्द में रहता है। उसका पाप– पुण्य से कोई सम्बन्ध नहीं हैं

इस प्रकार ईश्वर एक पुरूष विशेष है। उसे अपने उपकार हेतु कुछ नहीं करना। प्राणियों के प्रति दया करना उसका उद्देश्य है।

ईश्वर के अस्तित्व के प्रमाण

1. ईश्वर की सिद्धि में शब्द महत्वपूर्ण प्रमाण है। श्रुति एवं शास्त्र एक स्वर से ईश्वर की सत्ता मानते है। तथा उसकी प्राप्ति को जीवन का चरम लक्ष्य बताते है।
2. न्यून और अधिक मात्रा वाली वस्तुओं की अल्पतम कोटि के समान एक उच्चतम कोटि भी होती है। वस्तु का लघुत्तम रूप परमाणु है और वृहत्तर आकाश। इसी प्रकार ज्ञान की सबसे बड़ी मात्रा जहां रहती है ईश्वर है। जगत् में ज्ञान की धारा के प्रवाहित होने का वह मूलस्त्रोत है।
3. प्रकृति–पुरूष के संयोजक तथा वियोजक रूप से ईश्वर की सिद्धि होती है। जड़ प्रकृति की सृष्टि के लिए पुरूष के साथ संयोग कौन कराता है? प्रलयकाल में इन दोनों का वियोग कौन कराता है? वह सर्वज्ञ ईश्वर ही है। जो प्रत्येक पुरूष के कर्मो को जानता है और इसी के अनुसार प्रकृति और पुरूष का संयोग घटित करता है। जीवों तथा जगत् की सृष्टि के लिए प्रकृति को प्रेरित करता है।

ईश्वर की उपयोगिता

ईश्वर की उपयोगिता योगसाधन में नितान्त मौलिक है। ईश्वर–प्रणिधान से समाधि की सिद्धि मानी जाती है। प्रणिधान से क्लेश क्षीण हो जाते है। जो समाधि अभ्यास और वैराग्य के द्वारा परिश्रम से साध्य होती है। उसका सम्पादन इस प्रणिधान से सुगमता से हो जाता है। अतः समाधि की सिद्धि का सरल–साधन ईश्वर–प्रणिधान है। योग भारतीयों की विशिष्ट सम्पत्ति है। जिनका विज्ञान की भाँति अनुशीलन किया है तथा उन्नति की चरम सीमा पर पहुंचा दिया है। काया और चित्त को मलों से निर्मुक्त कर पुरूष की आध्यात्मिक उन्नति में उपयोग करना 'योग' ने ही

सिखाया हैं योग व्यावहारिक है। इसकी तत्त्वमीमांसा सांख्य के समान है। आधुनिक युग में योग की महत्ता अत्याधिक है। भारतीय एवं पाश्चात्य दोनों जगत् में मनुष्य योग क्रियाओं के प्रति आकृष्ट हुए हैं। आज के भौतिकवादी युग में मानव को मानसिक शान्ति, शरीर को स्वस्थ रहने में 'अष्टांग योग की अत्यधिक महत्ता है।

संदर्भ सूची

1. भारतीय योग परम्परा के विविध आयाम 1993, राजकुमारी पान्डेय राधा पब्लिकेषन–नई दिल्ली
2. योग दपर्ण – स्वामी दिव्यानंद सरस्वती
3. योग और आयुर्वेद – आचार्य राजकुमार जैन ,नई दिल्ली–1977
4. साधन पद्धतियों का ज्ञान और विज्ञान – 1998, आचार्य श्री राम षर्मा हरिद्वार .
5. सिद्ध संत और योगी – षम्भूरत्न त्रिपाठी